

उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का विवेचन

वीना रानी, सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, गुरु गोरखनाथ जी राजकीय महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य उपनिषद् साहित्य में वर्णित आत्मा और परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध का सूक्ष्म एवं तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करना है। वैदिक चिन्तन की चरम परिणति के रूप में उपनिषद् साहित्य को स्वीकार किया जाता है, जहाँ यज्ञ-कर्मकाण्ड-प्रधान वैदिक धारा ज्ञान-प्रधान वेदान्त-धारा में रूपान्तरित होती है। इस अध्ययन में छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ईश, तैत्तिरीय तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों के प्रमुख मन्त्रों एवं महावाक्यों का विश्लेषण करते हुए यह दर्शाया गया है कि आत्मा (व्यष्टि-चेतना) और परमात्मा अथवा ब्रह्म (समष्टि-चेतना) के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या उपनिषदों में एकरूप नहीं है, अपितु तादात्म्य, अंश-अंशी तथा भेदाभेद जैसी विविध दृष्टियों से की गई है। आगे चलकर आचार्य शंकर के अद्वैत वेदान्त, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत वेदान्त एवं मध्वाचार्य के द्वैत वेदान्त ने इन्हीं उपनिषद्-वाक्यों के आधार पर परस्पर भिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। शोध-पत्र में तात्त्विक विश्लेषण के साथ-साथ 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'अयमात्मा ब्रह्म' तथा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' जैसे महावाक्यों की समीक्षा भी की गई है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उपनिषद्-दर्शन आत्मा और परमात्मा के भेद को व्यावहारिक स्तर पर स्वीकार करते हुए भी पारमार्थिक स्तर पर उनकी एकता अथवा घनिष्ठ सम्बद्धता की ओर संकेत करता है। यह अध्ययन गुणात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है तथा मूल संस्कृत ग्रन्थों एवं प्रामाणिक हिन्दी व्याख्याओं का आश्रय लेकर तैयार किया गया है।

मुख्य शब्द

आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, उपनिषद्, वेदान्त, अद्वैत, तादात्म्य, महावाक्य, चेतना, मोक्षा

१. प्रस्तावना

भारतीय दार्शनिक परम्परा में उपनिषद् साहित्य का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। वेद के अन्तिम भाग के रूप में प्रतिष्ठित होने के कारण इन्हें 'वेदान्त' भी कहा जाता है — अर्थात् वेद का अन्त अथवा वेद का सार-तत्त्व। जहाँ संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ, कर्मकाण्ड तथा देव-स्तुति का प्राधान्य है, वहीं उपनिषदों में दृष्टि बाह्य कर्म से हटकर आन्तरिक चिन्तन, आत्म-साक्षात्कार तथा तत्त्व-जिज्ञासा की ओर केन्द्रित हो जाती है। उपनिषदों का केन्द्रीय प्रश्न यही है — 'सोऽहं कोऽहम्' अर्थात् मैं कौन हूँ, इस जगत् का मूल कारण क्या

है, तथा जीवात्मा और सृष्टि के मूल तत्त्व के मध्य क्या सम्बन्ध है। इसी जिज्ञासा के परिणामस्वरूप आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का प्रश्न उपनिषद्-चिन्तन का मूलाधार बन गया।

आत्मा शब्द से यहाँ अभिप्राय शरीर, इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि से पृथक् उस चेतन तत्त्व से है जो प्रत्येक प्राणी में नित्य, अपरिणामी तथा साक्षी-रूप में विद्यमान रहता है। इसके विपरीत परमात्मा अथवा ब्रह्म वह सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् एवं समस्त सृष्टि का उपादान तथा निमित्त कारण है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है, जिसमें स्थित रहता है, तथा जिसमें अन्ततः विलीन हो जाता है — जैसा कि तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है: 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्म' (तैत्तिरीय उपनिषद्, ३.१.१)। प्रश्न यह उठता है कि क्या यह जीवात्मा उस परमात्मा से सर्वथा भिन्न कोई सत्ता है, अथवा वस्तुतः वह उसी परम चैतन्य का अंश अथवा उसी से अभिन्न है। यही प्रश्न उपनिषदों के अनेक सूक्तों, संवादों तथा महावाक्यों का प्राणतत्त्व है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में इसी मूल प्रश्न को केन्द्र में रखकर उपनिषदों के प्रमुख मन्त्रों का विश्लेषण किया गया है तथा यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध को भिन्न-भिन्न रूपकों, संवादों तथा तर्क-पद्धतियों द्वारा समझाया गया है, और किस प्रकार परवर्ती आचार्यों ने इन्हीं वाक्यों की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं।

२. अध्ययन का उद्देश्य एवं महत्त्व

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- उपनिषद् साहित्य में वर्णित आत्मा एवं परमात्मा की अवधारणाओं का स्वतन्त्र रूप से विश्लेषण करना।
- प्रमुख दस उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध पर आधारित मन्त्रों एवं संवादों का अध्ययन करना।
- 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के आधार पर इस सम्बन्ध की प्रकृति (तादात्म्य, भेदाभेद अथवा अंश-अंशी) की समीक्षा करना।
- अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत वेदान्त की दृष्टि से इन्हीं वाक्यों की व्याख्या-भिन्नता को स्पष्ट करना।
- आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध के व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक निहितार्थों — विशेषतः मोक्ष की अवधारणा — को उजागर करना।

यह अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध का प्रश्न न केवल भारतीय दर्शन की आधारशिला है, अपितु यह मनुष्य के आत्म-बोध, जीवन के प्रयोजन तथा नैतिक आचरण को भी दिशा प्रदान करता है। वेदान्त-दर्शन की समस्त उत्तरवर्ती परम्पराएँ — चाहे वे अद्वैतवादी हों, विशिष्टाद्वैतवादी हों अथवा द्वैतवादी — अपने-अपने सिद्धान्तों की प्रामाणिकता के लिए इन्हीं उपनिषद्-वाक्यों की ओर उन्मुख होती हैं। अतः इस विषय का समुचित विवेचन भारतीय दर्शन की गहन समझ के लिए अनिवार्य है।

३. शोध-विधि

प्रस्तुत अध्ययन मूलतः गुणात्मक, वर्णनात्मक तथा तुलनात्मक शोध-पद्धति पर आधारित है। इसमें प्राथमिक स्रोत के रूप में मूल उपनिषद्-ग्रन्थों (छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, ईश, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर आदि) के मूल संस्कृत मन्त्रों का प्रयोग किया गया है, तथा द्वितीयक स्रोत के रूप में आचार्य शंकर, रामानुज एवं मध्व के भाष्यों तथा आधुनिक विद्वानों की व्याख्याओं का सहारा लिया गया है। मन्त्रों का अर्थ-निरूपण करते समय शाब्दिक अर्थ के साथ-साथ प्रासंगिक तथा दार्शनिक अर्थ पर भी ध्यान दिया गया है। तुलनात्मक विधि के माध्यम से विभिन्न उपनिषदों तथा विभिन्न वेदान्त-सम्प्रदायों की दृष्टियों का समानान्तर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

४. उपनिषद् साहित्य: एक संक्षिप्त परिचय

'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति 'उप' (समीप), 'नि' (निश्चयपूर्वक) तथा 'सद्' (बैठना) धातु से मानी जाती है, जिसका अभिप्राय है — गुरु के समीप बैठकर, एकाग्रचित्त होकर, गूढ़ आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण करना। परम्परा के अनुसार उपनिषदों की संख्या १०८ बताई जाती है, किन्तु इनमें से ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक — ये दस उपनिषद् 'प्रस्थानत्रयी' के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रामाणिक एवं प्राचीन माने जाते हैं, जिन पर आचार्य शंकर ने भाष्य लिखा। इनमें श्वेताश्वतर उपनिषद् को भी विशेष महत्त्व प्राप्त है, विशेषतः ईश्वरवादी वेदान्त की दृष्टि से।

उपनिषद् साहित्य की विशेषता यह है कि यह किसी एक सुसंगठित दार्शनिक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत नहीं है, अपितु गुरु-शिष्य संवाद, राजा-ऋषि संवाद तथा तपस्वियों के आत्म-मनन के रूप में विकसित हुआ है। याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद, याज्ञवल्क्य-जनक संवाद, उद्दालक-श्वेतकेतु संवाद, नचिकेता-यम संवाद जैसे प्रसिद्ध आख्यान इसी परम्परा के उदाहरण हैं, जिनमें आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध पर गहन चिन्तन प्रस्तुत हुआ है।

५. आत्मा की अवधारणा

उपनिषदों में आत्मा को शरीर, प्राण, मन, बुद्धि तथा अहंकार से पृथक् एक ऐसे तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है जो स्वयंप्रकाश, नित्य, अविनाशी तथा साक्षी-चैतन्य-स्वरूप है। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य अपनी पत्नी मैत्रेयी को उपदेश देते हुए कहते हैं कि पति, पुत्र, धन आदि किसी के लिए भी प्रिय नहीं होते, अपितु आत्मा के लिए ही प्रिय होते हैं — 'न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति, आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' (बृहदारण्यक उपनिषद्, २.४.५)। इस कथन का तात्पर्य यह है कि आत्मा ही समस्त प्रेम, इच्छा तथा मूल्य का केन्द्र-बिन्दु है, तथा आत्मा का ज्ञान ही परम पुरुषार्थ है।

कठोपनिषद् में नचिकेता और यम के संवाद में आत्मा के स्वरूप का अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन प्राप्त होता है। यम कहते हैं कि आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता तथा वायु सुखा नहीं सकती — 'न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥' (कठोपनिषद्, १.२.१८)। यहाँ आत्मा को अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन कहा गया है, जो शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता। यह विवेचन सांख्य-दर्शन में वर्णित पुरुष-तत्त्व से साम्य रखता है, यद्यपि सांख्य आत्मा और परमात्मा के मध्य द्वैतवादी दृष्टिकोण अपनाता है, जबकि उपनिषद् इस भेद को अन्ततः अतिक्रान्त करने की दिशा में अग्रसर होते हैं।

माण्डूक्य उपनिषद् आत्मा के चार पादों (अवस्थाओं) का वर्णन करता है — जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीया। इनमें प्रथम तीन अवस्थाएँ अनुभव-सापेक्ष हैं, किन्तु चतुर्थ अवस्था — तुरीय — शुद्ध, अद्वैत तथा शान्त चैतन्य-स्वरूप मानी गई है, जो वस्तुतः ब्रह्म ही है — 'सोऽयमात्मा अध्यक्षरम्, उक्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादाः, अकार उकारो मकार इति' (माण्डूक्य उपनिषद्, ८)। इस प्रकार माण्डूक्य उपनिषद् आत्मा की गहनतम अवस्था को सीधे ब्रह्म से जोड़ता है, जो आत्मा-परमात्मा तादात्म्य की एक महत्त्वपूर्ण उपनिषदीय आधारशिला है।

६. ब्रह्म अथवा परमात्मा की अवधारणा

ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति 'बृह्' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है — बढ़ना, विस्तृत होना। अतः ब्रह्म का अभिप्राय उस अनन्त, असीम तथा सर्वव्यापी सत्ता से है जो समस्त सृष्टि का मूल कारण है। तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म को सत्य, ज्ञान तथा अनन्त कहा गया है — 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तैत्तिरीय उपनिषद्, २.१.१)। यहाँ ब्रह्म को केवल अस्तित्व-मात्र नहीं, अपितु चैतन्य-स्वरूप तथा असीम भी कहा गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म जड़ तत्त्व नहीं अपितु चेतन तत्त्व है।

मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म को द्विविध ज्ञान — परा तथा अपरा विद्या — के माध्यम से समझाया गया है। अपरा विद्या के अन्तर्गत वेद, व्याकरण, ज्योतिष आदि लौकिक विद्याएँ आती हैं, जबकि परा विद्या वह है जिससे अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है — 'तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः... अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते' (मुण्डक उपनिषद्, १.१.४-५)। इसी उपनिषद् में यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार सहस्रों चिनगारियाँ अग्नि से उत्पन्न होकर पुनः उसी में लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार समस्त प्राणी अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होकर पुनः उसी में लीन हो जाते हैं — 'यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाऽक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति॥' (मुण्डक उपनिषद्, २.१.१)। यह रूपक आत्मा और ब्रह्म के मध्य उद्भव तथा लय के सम्बन्ध को अत्यन्त सजीवता से प्रस्तुत करता है — जीवात्मा उसी परम चैतन्य की चिनगारी है, न कि उससे सर्वथा भिन्न कोई पृथक् सत्ता।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्म को ईश्वर के रूप में, अर्थात् समस्त जगत् के नियन्ता, माया के अधिष्ठाता तथा जीवों के अन्तर्यामी के रूप में प्रस्तुत किया गया है — 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चा॥' (श्वेताश्वतर उपनिषद्, ६.११)। यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि परमात्मा को समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी आत्मा के रूप में वर्णित किया गया है, जिससे आत्मा और परमात्मा का घनिष्ठ, किन्तु साथ ही 'साक्षी' के रूप में एक विशिष्ट सम्बन्ध भी सूचित होता है — यह सम्बन्ध पूर्णतः अभेद का न होकर, अन्तर्यामिता का भी है, जो आगे चलकर विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत वेदान्त के लिए आधार प्रदान करता है।

७. आत्मा-परमात्मा सम्बन्धः प्रमुख उपनिषदों में विवेचन

७.१ छान्दोग्य उपनिषद् — उद्दालक-श्वेतकेतु संवाद तथा 'तत्त्वमसि'

छान्दोग्य उपनिषद् के षष्ठ अध्याय में उद्दालक ऋषि अपने पुत्र श्वेतकेतु को नौ उपमाओं (जल में नमक, वटबीज, मधु-मक्खी आदि) के माध्यम से यह समझाते हैं कि जिस प्रकार नमक जल में घुलकर अदृश्य होकर भी उस जल के प्रत्येक कण में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार वह सूक्ष्म तत्त्व — सत् — समस्त सृष्टि में व्याप्त है, तथा यही तत्त्व आत्मा भी है। इसी प्रसंग में नौ बार दुहराया गया प्रसिद्ध महावाक्य आता है — 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' (छान्दोग्य उपनिषद्, ६.८.७) अर्थात् 'हे श्वेतकेतु, वह तू ही है'। इस महावाक्य में 'तत्' पद परम सत्य अथवा ब्रह्म का, तथा 'त्वम्' पद जीवात्मा का वाचक है, और 'असि' क्रियापद इन दोनों के मध्य अभेद अथवा तादात्म्य को अभिव्यक्त करता है। यह महावाक्य आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध की सर्वाधिक स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष घोषणा मानी जाती है।

७.२ बृहदारण्यक उपनिषद् — 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा अन्तर्यामी-ब्राह्मण

बृहदारण्यक उपनिषद् में भी आत्मा-परमात्मा एकत्व की स्पष्ट घोषणा प्राप्त होती है — 'अहं ब्रह्मास्मि' (बृहदारण्यक उपनिषद्, १.४.१०) अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ'। यह महावाक्य प्रथम पुरुष में कहा गया है, जो साधक के आत्म-अनुभव की सीधी अभिव्यक्ति है। इसी उपनिषद् के अन्तर्यामी-ब्राह्मण खण्ड में याज्ञवल्क्य ऋषि उद्दालक को यह उपदेश देते हैं कि जो पृथ्वी में, जल में, अग्नि में, वायु में तथा आत्मा में स्थित रहकर भी उनसे भिन्न है, जिसे आत्मा भी नहीं जानता, जिसका शरीर आत्मा है, तथा जो आत्मा के भीतर से नियन्त्रण करता है, वही अमृत, अन्तर्यामी परमात्मा है — 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः' (बृहदारण्यक उपनिषद्, ३.७.२२)। यहाँ आत्मा और परमात्मा के मध्य एक सूक्ष्म, नियन्ता-नियन्त्रित सम्बन्ध भी सूचित होता है, जो पूर्ण अभेद और पूर्ण भेद — दोनों की अपेक्षा एक जटिलतर सम्बन्ध की ओर संकेत करता है।

७.३ ऐतरेय उपनिषद् — 'प्रज्ञानं ब्रह्म'

ऐतरेय उपनिषद् में एक अन्य महावाक्य प्राप्त होता है — 'प्रज्ञानं ब्रह्म' (ऐतरेय उपनिषद्, ३.१.३) अर्थात् 'चैतन्य अथवा प्रज्ञा ही ब्रह्म है'। इस वाक्य के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि जो चेतन-तत्त्व मनुष्य के भीतर देखने, सुनने, सूँघने, बोलने तथा जानने की सामर्थ्य के रूप में कार्य करता है, वही परम चैतन्य अर्थात् ब्रह्म है। इस प्रकार आत्मा की चेतन-शक्ति और ब्रह्म की चैतन्य-प्रकृति के मध्य तादात्म्य स्थापित किया गया है।

७.४ माण्डूक्य उपनिषद् — 'अयमात्मा ब्रह्म'

माण्डूक्य उपनिषद् में चौथा महावाक्य प्राप्त होता है — 'अयमात्मा ब्रह्म' (माण्डूक्य उपनिषद्, २) अर्थात् 'यह आत्मा ब्रह्म है'। यह वाक्य आत्मा की तुरीय अवस्था — शुद्ध, निर्विशेष तथा अद्वैत चैतन्य — को सीधे ब्रह्म के साथ अभिन्न घोषित करता है। इस प्रकार चारों महावाक्यों — तत्त्वमसि (छान्दोग्य), अहं ब्रह्मास्मि (बृहदारण्यक), प्रज्ञानं ब्रह्म (ऐतरेय) तथा अयमात्मा ब्रह्म (माण्डूक्य) — में आत्मा और ब्रह्म के मध्य अभेद अथवा तादात्म्य को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से अभिव्यक्त किया गया है। परम्परागत रूप से इन चारों महावाक्यों को क्रमशः सामवेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद तथा अथर्ववेद से सम्बद्ध माना जाता है।

७.५ ईशावास्योपनिषद् — सर्वव्याप्ति एवं एकत्व-दर्शन

ईशावास्योपनिषद् का आरम्भ ही इस उद्घोषणा से होता है कि इस चराचर जगत् में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है — 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' (ईशावास्योपनिषद्, १)। इसी उपनिषद् में आगे यह भी कहा गया है कि जो साधक समस्त प्राणियों में आत्मा को तथा आत्मा में समस्त प्राणियों को देखता है, उसे किसी से भी घृणा नहीं होती — 'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥' (ईशावास्योपनिषद्, ६)। यह मन्त्र आत्मा-परमात्मा एकत्व के व्यावहारिक तथा नैतिक निहितार्थ को उजागर करता है — जब साधक सम्पूर्ण सृष्टि में उसी एक आत्म-तत्त्व का दर्शन करता है, तब उसका सम्पूर्ण जीवन-व्यवहार करुणा तथा अभेद-बुद्धि से अनुप्राणित हो जाता है।

७.६ कठोपनिषद् — रथ-रूपक तथा परम पुरुष

कठोपनिषद् में शरीर की तुलना रथ से, बुद्धि की सारथि से, मन की लगाम से तथा इन्द्रियों की अश्वों से की गई है, जबकि आत्मा को रथी अर्थात् स्वामी कहा गया है — 'आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥' (कठोपनिषद्, १.३.३)। इसी उपनिषद् में यह भी कहा गया है कि जो पुरुष सम्यक् बुद्धि से युक्त, सदा शुद्ध मन वाला है, वही उस परम पद को प्राप्त करता है, जहाँ से पुनः जन्म नहीं होता — 'विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः। सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥' (कठोपनिषद्, १.३.९)। यहाँ आत्मा की साधना-यात्रा को उस परम पुरुष अथवा परमात्मा की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर एक क्रमिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें अन्ततः जीवात्मा परम तत्त्व में लीन हो जाता है — 'यथोदकं शुद्धे शुद्धमासितं तादृगेव

भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतमा॥' (कठोपनिषद्, २.१.१५), अर्थात् जिस प्रकार शुद्ध जल शुद्ध जल में मिलकर एकरूप हो जाता है, उसी प्रकार तत्त्वज्ञ मुनि की आत्मा परमात्मा में एकरूप हो जाती है।

७.७ तैत्तिरीय उपनिषद् — पञ्चकोश-विवेचन

तैत्तिरीय उपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में आत्मा को पाँच कोशों — अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय — के रूप में क्रमिक रूप से सूक्ष्मतर स्तरों पर वर्णित किया गया है। स्थूल शरीर (अन्नमयकोश) से आरम्भ कर साधक क्रमशः प्राण, मन तथा विज्ञान के स्तर को पार करते हुए अन्ततः आनन्दमय कोश तक पहुँचता है, जो ब्रह्म के अत्यन्त निकट माना गया है — 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' (तैत्तिरीय उपनिषद्, ३.६.१) अर्थात् 'आनन्द ही ब्रह्म है, ऐसा उसने जाना'। इस क्रमिक कोश-विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा और ब्रह्म के मध्य सम्बन्ध केवल एक बौद्धिक उद्घोषणा नहीं, अपितु एक अनुभवात्मक साधना-यात्रा का विषय है, जिसमें साधक स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होता हुआ अन्ततः ब्रह्मानुभूति तक पहुँचता है।

७.८ श्वेताश्वतर उपनिषद् — हंस-रूपक तथा जीव-ईश्वर सम्बन्ध

श्वेताश्वतर उपनिषद् में जीव और ईश्वर के सम्बन्ध को दो पक्षियों के प्रसिद्ध रूपक के माध्यम से समझाया गया है, जो एक ही वृक्ष पर बैठे हैं — इनमें से एक (जीवात्मा) वृक्ष के फलों का भोग करता है, जबकि दूसरा (परमात्मा) बिना भोग किए साक्षी-भाव से देखता रहता है — 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥' (श्वेताश्वतर उपनिषद्, ४.६; यह मन्त्र मूलतः ऋग्वेद, १.१६४.२० में भी प्राप्त होता है)। यह रूपक आत्मा और परमात्मा के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध को इंगित करता है — दोनों 'सयुज' अर्थात् घनिष्ठ रूप से संयुक्त तथा 'सखा' अर्थात् मित्रवत् हैं, किन्तु उनकी भूमिका में भेद है — एक भोक्ता है, दूसरा साक्षी। यही रूपक आगे चलकर विशिष्टाद्वैत एवं द्वैत वेदान्त के लिए एक महत्वपूर्ण आधार बनता है, जो आत्मा-परमात्मा के मध्य पूर्ण अभेद के स्थान पर घनिष्ठ किन्तु विशिष्ट सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं।

८. वेदान्त-सम्प्रदायों में आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध की व्याख्या

उपनिषदों के इन्हीं वाक्यों के आधार पर बादरायण-प्रणीत ब्रह्मसूत्र की रचना हुई, जिस पर आगे चलकर विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने भाष्य लिखकर वेदान्त-दर्शन की तीन प्रमुख शाखाओं की स्थापना की। यह उल्लेखनीय है कि तीनों सम्प्रदाय एक ही उपनिषद्-वाक्यों को आधार बनाते हुए भी परस्पर भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचते हैं, जिससे उपनिषद्-चिन्तन की व्याख्यात्मक समृद्धि तथा गहनता प्रकट होती है।

८.१ अद्वैत वेदान्त (आचार्य शंकर)

आचार्य शंकर के अद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मा और ब्रह्म में वस्तुतः कोई भेद नहीं है; भेद केवल अविद्या अथवा माया के कारण प्रतीत होता है। जीव अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर स्वयं को शरीर, मन तथा बुद्धि से तादात्म्य कर बैठता है, और इसी अज्ञान के कारण वह स्वयं को ब्रह्म से पृथक् अनुभव करता है। तत्त्वमसि आदि महावाक्य इसी अज्ञान का निवारण कर जीव को उसके वास्तविक ब्रह्म-स्वरूप का बोध कराते हैं। शंकर के अनुसार 'तत्' पद और 'त्वम्' पद के मध्य प्रत्यक्ष विरोध प्रतीत होने पर भी, लक्षणा-वृत्ति के माध्यम से इन दोनों पदों के उपाधि-सहित अंश का त्याग कर, शुद्ध चैतन्य-मात्र अर्थ में इनका अभेद सिद्ध होता है — इसे 'भागत्यागलक्षणा' कहा जाता है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध को पूर्ण अभेद अथवा तादात्म्य के रूप में स्वीकार करता है।

८.२ विशिष्टाद्वैत वेदान्त (आचार्य रामानुज)

आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैत वेदान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म में पूर्ण अभेद नहीं, अपितु 'विशिष्ट' अभेद है — अर्थात् जीव ब्रह्म का ही एक अंश अथवा शरीर है, तथा ब्रह्म जीव का शरीरी अथवा आत्मा है। इस दृष्टि से जीव और ब्रह्म के मध्य अंश-अंशी अथवा शरीर-शरीरी का सम्बन्ध है, जिसमें दोनों की स्वतन्त्र सत्ता होते हुए भी दोनों में अविभाज्य सम्बद्धता है, जैसे शरीर और आत्मा में होती है। रामानुजाचार्य के अनुसार 'तत्त्वमसि' का अर्थ है — 'तू, जो ब्रह्म का शरीरभूत अंश है, वस्तुतः उसी ब्रह्म पर आश्रित है', न कि यह कि जीव और ब्रह्म सर्वथा एक तत्त्व हैं। इस प्रकार विशिष्टाद्वैत वेदान्त आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध को घनिष्ठ किन्तु विशिष्ट (भेदाभेद-सदृश) सम्बन्ध के रूप में प्रस्तुत करता है।

८.३ द्वैत वेदान्त (आचार्य मध्व)

आचार्य मध्व के द्वैत वेदान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म सर्वथा भिन्न, स्वतन्त्र सत्ताएँ हैं। ब्रह्म स्वतन्त्र तत्त्व है, जबकि जीव सर्वदा ब्रह्म पर आश्रित तथा उसके अधीन रहने वाला परतन्त्र तत्त्व है। मध्वाचार्य के अनुसार महावाक्यों में प्रयुक्त 'तत्त्वमसि' जैसे वाक्यों की व्याख्या 'अतत्त्वमसि' अथवा 'स-तत्त्वमसि' के रूप में की जानी चाहिए, अर्थात् 'तू उस ब्रह्म के समान अथवा उसके अधीन है', न कि यह कि जीव स्वयं ब्रह्म है। इस प्रकार द्वैत वेदान्त आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध में स्पष्ट भेद तथा स्वामी-सेवक अथवा नियन्ता-नियन्त्रित सम्बन्ध को स्वीकार करता है, जो भक्ति-मार्ग के लिए विशेष रूप से अनुकूल दार्शनिक आधार प्रस्तुत करता है।

९. तुलनात्मक विश्लेषण

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध की व्याख्या एकरूप नहीं, अपितु बहुआयामी है। एक ओर 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' जैसे वाक्य पूर्ण अभेद अथवा तादात्म्य की ओर संकेत करते हैं, तो दूसरी ओर अन्तर्यामी-ब्राह्मण

तथा हंस-रूपक जैसे प्रसंग आत्मा और परमात्मा के मध्य एक विशिष्ट, नियन्ता-नियन्त्रित अथवा साक्षी-भोक्ता सम्बन्ध को भी इंगित करते हैं। यही द्वैविध्य आगे चलकर वेदान्त-दर्शन की तीन प्रमुख शाखाओं के रूप में विकसित हुआ। यह उल्लेखनीय है कि यह भिन्नता विरोधाभास नहीं, अपितु उपनिषद्-चिन्तन की उस गहनता को दर्शाती है, जो एक ही परम सत्य को भिन्न-भिन्न स्तरों — व्यावहारिक तथा पारमार्थिक — पर भिन्न-भिन्न रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करती है। सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि व्यावहारिक स्तर पर जीव और जगत् का भेद प्रतीत होता है, किन्तु पारमार्थिक अथवा गहनतम अनुभूति के स्तर पर आत्मा और परमात्मा में तादात्म्य अथवा घनिष्ठतम एकता की अनुभूति होती है।

इस प्रकार आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध की उपनिषदीय अवधारणा भारतीय दर्शन की उस विशिष्ट प्रवृत्ति को उजागर करती है, जो तर्क तथा अनुभूति दोनों के समन्वय से परम सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न करती है। यही कारण है कि आधुनिक विद्वानों — जैसे डॉ. सर्वेपल्ली राधाकृष्णन, पॉल ड्यूसन तथा अन्य भारतविद्याविशारदों — ने भी उपनिषदों को विश्व-दर्शन की अमूल्य निधि के रूप में स्वीकार किया है, जिसमें आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का चिन्तन अद्वितीय गहनता तथा व्यापकता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

१०. आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध के व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक निहितार्थ

आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध का यह विवेचन केवल सैद्धान्तिक जिज्ञासा तक सीमित नहीं है, अपितु इसका गहन व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व भी है। सर्वप्रथम, यह ज्ञान मोक्ष अथवा आत्यन्तिक दुःख-निवृत्ति का मार्ग प्रशस्त करता है — उपनिषदों के अनुसार जब साधक अपने वास्तविक आत्म-स्वरूप को परमात्मा से अभिन्न अथवा घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध जानता है, तब उसका अज्ञान-जनित शोक, भय तथा बन्धन समाप्त हो जाता है — जैसा कि ईशावास्योपनिषद् के मन्त्र 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' (ईशावास्योपनिषद्, ७) में कहा गया है — अर्थात् जो एकत्व का दर्शन करता है, उसे किस प्रकार का मोह अथवा शोक हो सकता है।

द्वितीयतः, यह ज्ञान नैतिक आचरण का आधार भी प्रस्तुत करता है। जब साधक समस्त प्राणियों में उसी एक आत्म-तत्त्व की उपस्थिति का अनुभव करता है, तब उसका व्यवहार स्वाभाविक रूप से करुणा, अहिंसा तथा समभाव से युक्त हो जाता है। तृतीयतः, यह चिन्तन मनुष्य के आत्म-सम्मान तथा आत्म-गौरव को भी प्रतिष्ठापित करता है, क्योंकि यह प्रत्येक जीव को परम चैतन्य से सम्बद्ध — चाहे अभिन्न रूप में, चाहे अंशरूप में — स्वीकार करता है, जिससे मनुष्य के अस्तित्व को गहन अर्थवत्ता प्राप्त होती है।

११. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र में उपनिषद् साहित्य में वर्णित आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। छान्दोग्य, बृहदारण्यक, ऐतरेय, माण्डूक्य, ईश, कठ, तैत्तिरीय तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आत्मा और परमात्मा के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या उपनिषदों में विविध रूपों में — कहीं तादात्म्य के रूप में, कहीं अंश-अंशी के रूप में, तथा कहीं साक्षी-भोक्ता के रूप में — की गई है। यह विविधता आगे चलकर अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत वेदान्त की भिन्न-भिन्न दार्शनिक प्रणालियों के रूप में विकसित हुई, जिनमें से प्रत्येक ने उपनिषद्-वाक्यों की अपनी दृष्टि से सुसंगत तथा तर्कसम्मत व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। तथापि, इन सभी व्याख्याओं में एक सामान्य तत्त्व स्पष्ट रूप से उपस्थित है — आत्मा और परमात्मा के मध्य कोई-न-कोई घनिष्ठ, अविभाज्य तथा सारभूत सम्बन्ध अवश्य है, जिसका बोध ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य — मोक्ष — माना गया है। इस प्रकार उपनिषद् साहित्य न केवल भारतीय दर्शन की आधारशिला है, अपितु यह मानव-चेतना की उस शाश्वत जिज्ञासा का भी प्रतिनिधित्व करता है, जो व्यक्ति और सृष्टि, सीमित और असीम, तथा जीव और ईश्वर के मध्य सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न करती रही है।

भविष्य के शोध के लिए यह सुझाव दिया जा सकता है कि आत्मा-परमात्मा सम्बन्ध के इस उपनिषदीय विवेचन का तुलनात्मक अध्ययन बौद्ध, जैन तथा अन्य भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के साथ-साथ पाश्चात्य तथा सूफी रहस्यवादी परम्पराओं के समानान्तर सम्बन्धित अवधारणाओं के साथ भी किया जा सकता है, जिससे इस चिरन्तन दार्शनिक प्रश्न की वैश्विक व्यापकता और भी स्पष्ट रूप से उजागर हो सकेगी।

संदर्भ सूची (References)

1. छान्दोग्योपनिषद् (शांकरभाष्य सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस।
2. बृहदारण्यकोपनिषद् (शांकरभाष्य सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस।
3. कठोपनिषद्, ईशावास्योपनिषद्, केनोपनिषद् एवं मुण्डकोपनिषद् (शांकरभाष्य सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस।
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद् एवं माण्डूक्योपनिषद् (गौडपादकारिका तथा शांकरभाष्य सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस।
5. श्वेताश्वतरोपनिषद् (शांकरभाष्य सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस।
6. बादरायण। (सं. वेदान्तसूत्राणि)। शांकरभाष्य, रामानुजभाष्य एवं मध्वभाष्य सहित। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
7. शंकराचार्य। दशोपनिषद्भाष्यम्। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।

8. राधाकृष्णन्, एस. (हिन्दी अनुवाद)। भारतीय दर्शन (भाग १)। नई दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज।
9. राधाकृष्णन्, एस. (हिन्दी अनुवाद)। उपनिषदों का दर्शन। नई दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज।
10. शर्मा, चन्द्रधर। भारतीय दर्शन: एक समालोचनात्मक सर्वेक्षण (हिन्दी अनुवाद)। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
11. दत्त, एस., तथा चटर्जी, एस. सी. भारतीय दर्शन का परिचय (हिन्दी अनुवाद)। कलकत्ता विश्वविद्यालय।
12. देव, रामसुख। उपनिषद्-दर्शन-मीमांसा। वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन।
13. पाण्डेय, बलदेव उपाध्याय। वेदान्त-दर्शन। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
14. गम्भीरानन्द, स्वामी। ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य (हिन्दी टीका)। कलकत्ता: अद्वैत आश्रम।
15. तपस्यानन्द, स्वामी। श्रीमद्भगवद्गीता एवं उपनिषद्-चिन्तन (हिन्दी अनुवाद)। मद्रास: श्री रामकृष्ण मठ।
16. जोशी, कृष्णचन्द्र। उपनिषदों में तत्त्वमीमांसा। दिल्ली: राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान।
17. मिश्र, उमेश। भारतीय दर्शन (उपनिषद्-खण्ड)। इलाहाबाद: हिन्दुस्तानी अकादमी।